जनसत्ता

प्याज के आंसू

तीन महीने से ज्यादा हो चुके हैं, लेकिन प्याज के दाम सवा सौ से डेढ़ सौ रुपए किलो के बीच बने हुए हैं। देश के ज्यादातर शहरों में प्याज इसी भाव बिक रहा है। हालांकि सरकार एक नहीं, कई बार यह दावा कर चुकी है कि लोगों को कम दाम पर प्याज मुहैया कराने की दिशा में इसके आयात सहित कई कदम उठा रही है, लेकिन डेढ़ सौ रुपए किलो का भाव सरकार के इन दावों की कलई खोलने के लिए काफी है। जाहिर है, सरकारी प्रयासों का कहीं कोई असर नहीं दिख रहा है। तुर्की, मिस्र, अफगानिस्तान जैसे देशों से प्याज खरीदने के बाद भी समस्या जस की तस बनी हुई है। आयातित प्याज के साथ बड़ी दिक्कत यह सामने आई है कि लोग इसे खरीद नहीं रहे। दरअसल, भारतीय परिवारों में देशी प्याज ही खाया जाता है और लोग इसके स्वाद के आदी हैं। अफगानिस्तान और तुर्की से जो प्याज आ रहा है, वह बेस्वाद तो है ही, उसका छिलका भी मोटा है और एक प्याज तीन सौ-चार सौ ग्राम तक का है। ऐसे में जो व्यापारी अपने स्तर पर इसका आयात कर रहे हैं, उनके सामने भी यह संकट खड़ा हो गया है कि जब लोग ले नहीं रहे तो इसे कहां खपाया जाए।

भारत में इस साल प्याज उत्पादक राज्यों में भारी बारिश से फसलें चौपट हो गईं थीं। इस कारण प्याज की पैदावार में भारी गिरावट आई और इसका नतीजा यह हुआ कि मांग और आपूर्ति में बड़ा अंतर बन गया। ऐसे में दाम चढ़ते चले गए। प्याज महंगा होने के पीछे सबके अपने-अपने तर्क हैं। कारोबारी कह रहे हैं कि देश में प्याज का स्टॉक काफी कम है, नई फसल आने में अभी वक्त है। हालांकि यह चक्र हर साल का है। अक्तूबर-नवंबर में नई फसल आने से पहले प्याज का स्टॉक कम ही रहता है। ऐसे में इसका सबसे ज्यादा फायदा जमाखोर उठाते हैं। सरकारें भी इस बात को अच्छी तरह समझती हैं, लेकिन जमाखोरी और कालाबाजारी करने वालों के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं होती। हालांकि सरकारें प्याज का पर्याप्त भंडार होने का दावा करती रहती हैं, फिर भी बाजार में किल्लत बनी रहती है। सरकारी दुकानों और भंडारों से रियायती दामों पर प्याज बेचने की योजनाएं भी चलाई जाती हैं। पर यहां भी जमाखोर और कालाबाजारी करने वाले पीछा नहीं छोड़ते और सस्ता प्याज लेकर महंगा बेचने का खेल करते रहते हैं।

देश में प्याज की भारी कमी को देखते हुए सरकार ने सबसे पहले इसके निर्यात पर पाबंदी लगाई थी, ताकि देश में मांग पूरी की जा सके। हालांकि भारत में प्याज की पैदावार काफी होती है और भारत बांग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल जैसे देशों को निर्यात भी करता है। लेकिन प्याज का यह संकट हर तीन-चार महीने में एक झटका दे जाता है। प्याज ऐसी खाद्य वस्तु है जिसका लंबे समय तक भंडारण नहीं किया जा सकता और आलू से भी ज्यादा इसका इस्तेमाल होता है। ऐसे में जब यह पता है कि बार-बार प्याज की किल्लत होती है और इसके बढ़ते दाम लोगों के आंसू निकालते हैं, तो क्यों नहीं ऐसा बंदोबस्त किया जाता जिससे इसकी आपूर्ति में बहुत ज्यादा असंतुलन पैदा न हो। अगर आलू, प्याज, टमाटर जैसी चीजें साल में चार बार भी महंगी होती हैं, तो इसका दोष सिर्फ फसल को नहीं दिया जा सकता। कहीं न कहीं हमारी नीतियां और प्रबंधन भी इसके लिए जिम्मेदार हैं।

सर्दी का सितम

पूरा उत्तर भारत कड़ाके की ठंड से ठिठुर रहा है। सर्दी के पुराने रिकार्ड टूट रहे हैं और नए बन रहे हैं। राजधानी दिल्ली में इस बार दिसंबर की सर्दी ने एक सौ बारह साल का रिकार्ड तोड़ डाला। शनिवार को दिल्ली में अब तक का सबसे ठंडा दिन दर्ज किया गया। पहाड़ी इलाकों की बात करें तो कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड के ज्यादातर इलाकों में तापमान शून्य नीचे बना हुआ है। उत्तराखंड के ऊंचाई वाले इलाकों में बर्फीले तूफान की वजह से हालात ज्यादा गंभीर हैं। नदी-नाले जम गए हैं। मैदानी इलाकों में भी कई जगह पारा शून्य से नीचे है। राजस्थान के कई हिस्सों में तापमान शून्य के करीब पहुंच जाने से पानी जमने लगा है। उत्तर भारत के ज्यादातर मैदानी इलाकों का तापमान शिमला से भी कम हो गया है। इसी के साथ कोहरे की मार भी पड़ रही है। कई जगह घने कोहरे की वजह से सड़क हादसों में लोग मारे गए हैं। ये हालात बता रहे हैं कि चाहे पहाड़ी क्षेत्र हों या मैदानी, कड़ाके की ठंड ने हर जगह लोगों का जीना मुश्किल कर दिया है। तेज ठंड में मरीजों खासतौर से बुजुर्गों और बच्चों की हालत बिगड़ती है और अस्पतालों में मरीजों की भीड़ बढ़ने लगती है। सर्दी से होने वाली मौतों के आंकड़े का तो सही-सही पता ही नहीं लगाया जा सकता। इन सबसे तो लगता है कि सर्दी का मौसम कहीं ज्यादा ही मुश्किलों भरा होता जा रहा है।

मौसम की ये मार अभी तो शुरू हुई है। ऐसा मौसम मकर संक्रांति तक रहता है। सर्द हवाएं, बर्फबारी, बारिश, इनसे होने वाली मुश्किलें और नुकसान कोई अब कोई नई बात नहीं रह गई हैं। नई बात यह है कि पिछले कुछ सालों में ठंड की अवधि और तीव्रता दोनों में बदलाव आया है। हर साल सर्दी किसी न किसी रूप में पिछले रिकार्ड को तोड़ रही है। कभी किसी दिन के अधिकतम या न्यूनतम तापमान को लेकर, तो कभी बर्फवारी के वक्त को लेकर। करीब तीन दशक पहले तक तो सर्दी की अवधि औसतन चार सा पांच महीने रहती थी, लेकिन अब सर्दी कुछ दिन ही पड़ती है, लेकिन पहले की तुलना में कहीं ज्यादा मारक हो गई है। आमतौर पर दिसंबर का महीना भी कड़ाके की ठंड का अहसास नहीं कराता, अक्तूबर और नवंबर के महीने में तो पंखे चलते हैं। लेकिन इस बार दिसंबर के तापमान ने सदी का रिकार्ड तोड़ डाला। पहाड़ी क्षेत्रों में बर्फबारी का समय भी बदला है। दरअसल मौसम चक्र बदल रहा है, इसी से मौसम का मिजाज भी बदला है और इससे भारत ही नहीं, पूरी दुनिया प्रभावित हो रही है।

सवाल सर्दी के मौसम में होने वाली उन समस्याओं को लेकर है जिनका हम हर साल सामना करते हैं। लेकिन अगली बार वैसी मुश्किलों का सामना न करना पड़े, इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाते। इसी कड़ाके की ठंड में बड़ी संख्या में लोग सड़कों पर सोने को मजबूर हैं, जिन्हें सरकारी रैनबसेरों तक में जगह नहीं मिलती, खाना तो दूर। सर्दी जनित बीमारियां गरीब लोग इसलिए नहीं झेल पाते कि उनके पास अस्पताल जाने तक के भी पैसे नहीं होते। ऐसे में गरीब को सर्दी मारती है। दिल्ली जैसे दूसरे शहरों में ठंड इसलिए भी ज्यादा घातक साबित हो रही है क्योंकि ये शहर गंभीर प्रदूषण की मार झेल रहे हैं, इनकी हवा जहरीली हो चुकी है, लोग सांस नहीं ले पा रहे। ऐसे में सर्दी से बचाव के उपाय ज्यादा जरूरी हैं जो हम कर नहीं पाते।

कल्पमेधा

धर्म एक भ्रमपूर्ण सूर्य है, जो मनुष्य के गिर्द तब तक घूमता रहता है, जब तक मनुष्य मानवता के गिर्द नहीं घूमता।

– कार्ल मार्क्स

बुजुर्ग आबादी का संकट

नरपत दान चारण

मौजूदा तकनीकी दौर में जीवन यांत्रिक हो गया है और बुजुर्ग हाशिए पर कर दिए गए हैं। संयुक्त परिवार प्रथा विलुप्त होती जा रही है। आज वृद्धाश्रमों में जूझते लोगों की पीड़ा किसी से छिपी नहीं है। युवा पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी में बढ़ते फासले से बुजुर्ग तिरस्कार और अपमान के बीच जीने को मजबूर हैं। वृद्धाश्रम का होना उनके जीवन के कड़वे समय को दर्शाता है।

हाल में संसद सत्र के दौरान लोकसभा में माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण एवं कल्याण संशोधन विधेयक पेश किया गया, जिसमें वरिष्ठ नागरिकों के लिए गरिमापूर्ण जीवन सुनिश्चित करने और उनके साथ दुर्व्यवहार करने पर कठोर दंड का प्रावधान किया गया है। इसके अंतर्गत पुत्रवधू और दामाद को बच्चों की परिभाषा की परिधि में लाने की बात भी कही गई है। इसका मकसद माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों की ओर से भरण-पोषण के लिए प्रस्तुत किए जाने वाले आवेदनों के शीघ्र निपटान का उपबंध करना है। इसके तहत प्रत्येक जिले में वरिष्ठ नागरिकों के लिए विशेष पुलिस यूनिट का गठन करने, प्रत्येक थाने में वरिष्ठ नागरिकों के लिए शीर्ष अधिकारी नियुक्त करने और वरिष्ठ नागरिक हेल्पलाइन रखने की बात कही गई है। वहीं अपने बुजुर्गों की सही से देखभाल नहीं करने के वाले लोगों की सजा भी दोगुनी कर दी गई है। यहां देखभाल शब्द को भी परिभाषित किया गया है, जिसमें रहने का इंतजाम और सुरक्षा देने को शामिल किया गया है। रखरखाव की राशि को वरिष्ठ नागरिक, परिजन, बच्चे और रिश्तेदारों की कमाई के आधार पर तय किया जाएगा।

नए विधेयक में रखरखाव के लिए दी जाने वाली दस हजार रुपए राशि की ऊपरी सीमा को अब हटा दिया जाएगा। साथ ही किसी भी अपील को पंचाट में जाने के नब्बे दिन के भीतर निपटाने की व्यवस्था की गई है। अगर वरिष्ठ नागरिक की उम्र अस्सी साल से ज्यादा है तो उस स्थिति में ऐसे आवेदन को साठ दिन में निपटाना जरूरी होगा। बच्चों, दामाद या बहू द्वारा उपेक्षा किए जाने पर बुजुर्ग न्याय पाने के लिए भरण-पोषण अधिकरण से संपर्क कर सकते हैं। देखने वाली बात है कि हम विश्व में बुजुर्गों की जनसंख्या के लिहाज से भी दूसरे नंबर पर है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि 2050 तक भारत की बीस फीसद आबादी बूढ़ी हो जाएगी, जो अभी छह फीसद है। बढ़ती उम्र के साथ अनेक प्रकार की मनोवैज्ञानिक समस्याएं जन्म लेने लगती हैं। साथ ही पुराने रोग हरे हो जाते हैं। हमारे देश में बुजुर्गों की समस्याओं को कुछ बिंदुओं के माध्यम से एक सीमा तक ही समझा जा सकता है। राष्ट्रीय स्तर के एक सर्वेक्षण के अनुसार बुजुर्गों की अस्सी फीसद आबादी ग्रामीण इलाकों में रहती है। इस कारण उन तक पर्याप्त सेवाएं नहीं पहुंच पातीं। हमारे तीस फीसद बुजुर्ग गरीबी रेखा से नीचे की श्रेणी में आते हैं।

देश में बुजुर्गों के प्रति समाज और सरकार दोनों का उपेक्षित रवैया रहा है। प्राचीन समय से भारतीय समाज में बुजुर्गों का हमेशा एक सम्मानीय स्थान रहा है। लेकिन एक मार्गदर्शक और पारिवारिक मुखिया होने के नाते जो सम्मान बुजुर्गों को मिलता था, उसमें धीरे-धीरे कमी आ रही है। अनुभव को अमूल्य पूंजी समझने वाला समाज ही अब इनके प्रति बुरा बर्ताव भी करने लगा है। बाजारवाद और उदारीकरण के चलते समाज में बुजुर्गों का सम्मान भी कम हुआ है। उपभोक्ता समाज में बुजुर्ग 'खोटा सिक्का' समझे जाने लगे हैं।

भारतीय संस्कृति में परिवार के बुजुर्गों के प्रति सम्मान और आदर की भावना रखना और उनकी हर सुख-सुविधाओं का हर समय ध्यान रखना हमारी प्राचीन परंपरा रही है। चाहे पारिवारिक समारोह हो, त्योहार हो या कोई शुभ कार्य, हर उस कार्य से पहले घर के बड़े बुजुर्गों से सलाह लेना, मार्गदर्शन या आशीर्वाद लिया जाना आवश्यक माना जाता था। लेकिन मौजूदा तकनीकी दौर में जीवन यांत्रिक हो गया है और बुजुर्ग हाशिए पर कर दिए गए हैं। संयुक्त परिवार प्रथा विलुप्त होती जा रही है। आज वृद्धाश्रमों में जूझते लोगों की पीड़ा किसी से छुपी नहीं है। युवा पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी में बढ़ते फासले से बुजुर्ग तिरस्कार और अपमान के बीच जीने को मजबूर हैं। वृद्धाश्रम का होना उनके जीवन के कड़वे समय को दर्शाता है।

बुजुर्गों की इस स्थिति के लिए यहां किसी को भी जिम्मेदार ठहराना समस्या का समाधान नहीं है। लेकिन इसके लिए इसके कारणों पर ध्यान दिया जाए तो समाधान निकलना भी कोई मुश्किल नहीं है। किसी भी रिश्ते की पहली शर्त होती है कि आपसी तालमेल और परवरिश, जो रिश्तों को सुधारने के लिए जरूरी हैं। कभी-कभी बुजुर्गों द्वारा ज्यादा सख्ती बरतना बच्चों को अखरता है। लेकिन ऐसे में आवेश में आने की बजाय उन बुजुर्गों की बातों को सहजता से सुनने और उसके अनुरूप उनकी इच्छाओं को भी एक दायरे में रहते हुए महत्व देना चाहिए। कामकाजी पुरुष और महिला अगर घर का पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाते हैं और बुजुर्गों की देखभाल करने में असमर्थता जाहिर करते हैं, तो ऐसे उन्हें कम से कम बुजुर्ग माता-पिता के प्रति व्यवहार को नहीं बदलना चाहिए। उन्हें संबल और सहानुभूति देनी चाहिए। उनकी सेवा के लिए किसी सेवक को रखा जा सकता है। वृद्धावस्था में बुजुर्गों को विशेष देखभाल की जरूरत होती है। उनके साथ समय बिताने की जरूरत होती है। यह भी सोचने की बात है कि जिन माता पिता ने जन्म दिया और फिर पाल-पोस कर काबिल बनाया, तो उनके प्रति दुर्भावना रखना या उनसे अलगाव रखना बहुत ही दुखद बात है। बहुत तकलीफ देह होता है बुढ़ापे की स्थिति में सड़कों पर किसी से भीख मांगते देखना, किसी लोकल ट्रेन में भारी भरकम बोझ उठाए फेरी लगाते देखना, अपमान का घूंट पीकर अपने जीवन को ढोना या फिर अपने आप को गिरवी रख कर वृद्धाश्रम की ऊंची दीवारों को नापना। ऐसी स्थिति परिवार और समाज के पतन की ओर भी इशारा करती है।

संभवतः परिवार के भीतर बुजुर्गों की ऐसी स्थिति और बच्चों के साथ मनमुटाव के लिए दो अलग पीढ़ियों की अलग सोच और परिस्थितियों के प्रति भिन्न दृष्टिकोण उत्तरदायी है। इस अंतर को दूर करने के बाद परिवार के बुजुर्गों और अन्य सदस्यों के बीच की खाई को समाप्त किया जा सकता है। साथ ही, बच्चों को यह अहसास दिलाया जा सकता है कि जिन अभिभावाकों को वे व्यक्तिगत जरूरतों को पूरा करने के लिए भूलते जा रहे हैं, उनके बिना कोई भी खुशी और परिवार की संरचना अधूरी ही रहेगी। इसलिए स्वार्थ भावना को त्याग कर कुछ समय के लिए अपने माता-पिता की खुशी में शामिल होकर उनके लिए अपनी भावनाओं का इजहार करने की ओर ध्यान दिया जाए तो जीवन का सही आनंद और औचित्य समझ में आ सकता है। शारीरिक समस्या वृद्धों की सबसे बड़ी समस्या होती है। फिलहाल हमारे देश में बुजुर्गों में गैर संक्रामक रोगों एवं किसी न किसी प्रकार की विकलांगता की समस्या सबसे ज्यादा है। शोधकर्ताओं का सुझाव है कि वृद्धों के लिए बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराई जाएं और स्वास्थ्य शिक्षा के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए। हमारी स्वास्थ्य प्रणाली बुजुर्गों में बढ़ती अल्झाइमर, डिमेंशिया आदि से निपटने के लिए पर्याप्त साधन नहीं हैं। स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारी भी इस प्रकार के रोगियों की देखभाल के लिए प्रशिक्षित नहीं हैं। ऐसे मामलों में स्वास्थ्य सेवाएं अपर्याप्त तो हैं ही, साथ ही अस्पताल में भर्ती होने का खर्च भी बहुत ज्यादा है। भारत के मानव विकास सर्वे, 2015 के अनुसार 2005-12 के दौरान पुराने एवं असंक्रामक रोगों से पीड़ित बुजुर्गों की संख्या दुगुनी हो गई। इनमें महिलाओं की संख्या अधिक है।

बुजुर्गों के हितों के प्रति जापान सरकार के प्रयासों से सबक लिया जा सकता है। जापान ने 'केयर होम' यानी देखभाल केंद्र का रास्ता निकाला है। प्रतिदिन वीडियो कांफ्रेंसिंग के माध्यम से अस्पतालों के डॉक्टर या नर्स बुजुर्गों से दिन में दो-तीन बार उनका हालचाल और दवाई लेने के बारे में पूछते रहते हैं। भारत में आज स्वास्थ्य सेवाओं में भी नवाचार की आवश्यकता है। इन सबके बावजूद गरीबी से जूझ रहे बुजुर्ग तो अपने उद्धार के लिए सरकार की ओर ही आस लगाए बैठे रहते हैं।

सुख में दुख

सूर्यप्रकाश चतुर्वेदी

लोग जितना अपने दुख से दुखी होते हैं, उससे ज्यादा वे आमतौर पर दूसरों के सुख से दुखी रहते हैं। मसलन, अगर किसी के पास अधिक पैसा, संपत्ति और वैभव है और हमारे पास नहीं है तो हमें उसका सुख बर्दाश्त नहीं होता। जो हमारे पास है, उससे संतुष्ट रहने और खुश रहने के बजाय हम जो उसके बारे में सोच कर दुखी होते हैं, हमारे पास नहीं है। क्या यह नकारात्मक सोच नहीं है?

यह सोचने की जरूरत है कि अगर हमारे सभी अंग चुस्त-दुरुस्त हैं और हम पूरी तरह स्वस्थ हैं और कोई दवाई भी नहीं लेते, बढ़ी उम्र में भी अपने सारे शारीरिक और मानसिक कार्य कर लेते हैं तो हम भाग्यवान और सुखी हैं कि नहीं? अक्सर हम देखते हैं कि हमसे आधी उम्र के लोगों को रक्तचाप और मधुमेह है या फिर कोई असाध्य बीमारी है और उन्हें लगातार डॉक्टर और अस्पताल में चक्कर काटने पड़ते हैं। लेकिन हमारा ध्यान उन पर जाने के बजाय वैसे लोगों पर जाता है, जिनके पास वह सब है जो हमारे पास नहीं है। यानी लोग अगर हमसे अधिक सुखी हैं तो कुछ लोग अधिक दुखी भी तो हैं। लेकिन हम सुखी लोगों की ओर ही देखते हैं, दुखी की ओर नहीं। यह असंतुलित दृष्टिकोण है और इसे सुधारे जाने की जरूरत है। वरना हमारा व्यक्तित्व ही बिगड़ जाएगा। दूसरे की कमीज हमारी कमीज से अधिक सफेद हो तो हम परेशान होते हैं और यह हमें बर्दाश्त नहीं होता। हम अपनी कमीज को भी उतनी ही सफेद करने की कोशिश क्यों नहीं करते? जो मुमकिन है और हो सकता है वह हम जरूर करें। हम वजन तो कम कर सकते हैं, पर कद और लंबाई मनमाने तरीके से नहीं बढ़ा सकते। यह मूल फर्क हमें समझना चाहिए।

दुनिया मेरे आगे

किसी से कुढ़ कर तो हम अपना अहित करते हैं। इससे हमारी कार्यक्षमता भी प्रभावित होती है। साहस और मनोबल क्या चीज है इसका जीता जागता प्रमाण मुझे एक दिन देखने का अवसर मिला। मेरे घर के सामने मालिश केंद्र है, जहां हाथ-पैर की मोच और चोट के लिए लोग आते है। एक दिन एक ऐसा व्यक्ति रिक्शे में आया, जिसका बायां पैर घुटने के नीचे से पूरा कटा हुआ था, जिसमें उसे मालिश करवा कर लेप लगवाना था। वह वॉकर के सहारे नीचे उतरा और अपने साथी के साथ मालिश के लिए गया। फिर उसी तरह वापस आया और जाने लगा। मैंने उससे पूछा कि उसके साथ क्या दुर्घटना हुई, जिसके कारण उसे पैर कटवाना पड़ा। उसने कहा कि करीब पंद्रह साल पहले एक रेल दुर्घटना में उसका आधा पैर कट गया था, तब से बिना शिकवे के वह इसी तरह अपना जीवन बिता रहा है। जब लोग इस जीवट और स्वाभिमान के साथ जीते हैं तो फिर तंदुरुस्त और सक्षम व्यक्ति क्यों दूसरों को देख कर कोफ्त में अपना ही जीवन कष्टप्रद बनाते हैं?

इसी तरह एक महिला बचपन से दृष्टिबाधित हैं और पिछले बीस वर्षों से अपने सारे काम खुद कर रही है। फिजियोथेरेपी भी करती हैं और कम्प्यूटर भी बखूबी चलाती हैं। जब लोग कष्ट में रहते हुए और दुखी होकर भी खुश रहते हैं तो हम सक्षम होकर भी क्यों दुखी होते हैं? एक व्यक्ति के दोनों पैर नहीं है। वह भी हम्मालों के बीच ट्रकों पर रस्सी फेंकने का काम करके अपनी आजीविका चलाता है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो टूटे नहीं और हिम्मत से जीते रहे।

जरूरी यह है कि हम अपनी क्षमता का आकलन करें और उसका पूरा दोहन करें। लक्ष्य निर्धारित करें और उसे प्राप्त करने के लिए सौ फीसदी योगदान दें। खुद की खूबी को पहचाने और उसका पूरा इस्तेमाल करें। जो कर सकते हैं उसे पूरी शिद्दत से करें। शंकाओं को दिमाग से निकाल दें। आखिर ऐसा क्यों है कि हमें लोगों को दुखी देखने में कोई हर्ज नहीं लगता है और जब किसी को सुखी देखते हैं तो अपने दुखी होने के बारे में सोचने लगते हैं! हम औरों को तो देखते हैं, पर खुद को नहीं देखते। सबसे मेल मुलाकात भी करते हैं, पर हमारी कभी खुद से मुलाकात ही नहीं होती। अकेले में कभी खुद से भी अगर मुलाकात करें और गौर करें कि हमने क्या किया और क्या नहीं किया, क्या खोया और क्या पाया। यह तभी संभव है जब हम पूरी एकाग्रता से आत्मनिरीक्षण और आत्मविश्लेषण करें। साहस के साथ अपने भीतर की ताकत और हौसले की पहचान भर करने की जरूरत है। काम मुश्किल जरूर है, पर नामुमकिन नहीं। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि जिंदगी में सबको सभी कुछ नहीं मिलता। किसी शायर की ये पंक्तियां याद आती है- कभी किसी को मुकम्मल जहां नहीं मिलता, कहीं जमीन तो कहीं आसमां नहीं मिलता'! जो हमारे पास है और हमें मिला है, उसी का पूरा आनंद लेना चाहिए। इधर-उधर देख कर दुखी क्यों हों!

सजा का पैमाना

यह एक प्रचलित अवधारणा है कि समय और समाज के सभ्य होने के साथ दंड विधान भी अधिक नरम होते जाते हैं और क्रूरतम प्रकृति की सजा क्रमशः चलन से बाहर हो जाती है। यह धारणा इस बुनियाद पर टिकी है कि मानव समाज निरंतर सभ्य होता चलता है और एक सभ्य समाज में कोई ऐसा कानून शेष नहीं रहना चाहिए जो उस सभ्यता के अनुकूल न हो। प्राचीन भारत में भी मृत्युदंड की व्यवस्था थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र का एक पूरा अध्याय उन सभी अपराधों की फेहरिस्त को समर्पित है, जिनके लिए प्राणदंड दिया जाना नियत था। मौर्य सम्राट अशोक ने पशुवध को तो तिरस्कृत किया, लेकिन मृत्युदंड पर रोक नहीं लगाई। विदेशी यात्रियों के संस्मरणों से भी प्राचीन भारत में मृत्युदंड की उपस्थिति का पता चलता है।

आधुनिक विश्व की बात करें तो एमनेस्टी इंटरनेशनल की रिपोर्ट के अनुसार अब तक एक सौ एक देशों ने मृत्युदंड की व्यवस्था पर प्रतिबंध लगा दिया है। साथ ही तैंतीस देश ऐसे भी हैं जहां पिछले दस वर्षों से एक भी मृत्युदंड नहीं दिया गया है। लेकिन चालीस से अधिक ऐसे देश हैं जहां आज भी मृत्युदंड दिया जाता है। इनमें मुख्य हैं- चीन, पाकिस्तान, भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, इंडोनेशिया और अरब देश। मृत्युदंड के समर्थन में प्रतिकारवादी से लेकर उपयोगितावादी तर्क तक दिए जाते रहे हैं। प्रतिकारवादी तर्क मुख्य रूप से प्रतिशोध से संचालित होता है। इसके अनुसार अपराधी ने जघन्य अपराध करके खुद को मृत्युदंड का भागी बनाया है। कांट के स्वतंत्र संकल्प का सिद्धांत और उपयोगितावादी दर्शन, दोनों ही मृत्युदंड के पक्ष में झुके दिखाई पड़ते हैं।

देखा जाए तो मृत्युदंड सुनाए जाने से लेकर आखिर में दिए जाने तक की एक लंबी अवधि अपराधी के परिवार के लिए भी यातनामय होती है। उसकी इस यातना के लिए कहीं न कहीं राज्य ही नैतिक रूप से जिम्मेदार होता है। मृत्युदंड से जुड़ा एक मसला यह भी है कि अगर राज्य जीवन दे नहीं सकता तो फिर जीवन समाप्त करने का उसे क्या नैतिक अधिकार है? ऐसे में आज जब सभ्यता के विकास के साथ मृत्युदंड को प्रतिस्थापित करने का संवाद होना चाहिए।

हाल के घटनाक्रम ने इस व्यवस्था को एक नई दिशा प्रदान कर दी है, जिसे बड़ा ही प्रचलित जामा पहनाया जा रहा हैं 'एनकाउंटर'। बात यही नही रुकती। इस समय की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि हम अपनी इस मृतक व्यवस्था पर तालियां भी ठोकने में नहीं हिचकते। बहरहाल, मृत्युदंड से जुड़ी बहस अपराधी के साथ ही खत्म नहीं हो जानी चाहिए, बल्कि अपराध को लेकर समाज की नैतिक जिम्मेदारी पर भी बहस होनी चाहिए। आतंकवाद या पाशविक बलात्कार एवं हत्या जैसी जिन घटनाओं पर मृत्युदंड की मांग सबसे मुखर होकर उठती है, उनकी जड़ें समाज की ही अन्यायपूर्ण और विभाजनकारी संरचनाओं और पितृसत्तात्मक और हिंसा के महिमामंडन से जुड़ी ग्रंथियों में होती हैं, जिनको जाने-अनजाने में समाज ही फूहड़ गीतों, हिंसक फिल्मों और राजनीतिक स्वीकारोक्ति देकर बढ़ावा देता है। इन पर चेतना, समाज को अपराध से जुड़े नैतिक उत्तरदायित्व से रूबरू कराएगी और भविष्य में मृत्युदंड जैसे दंड के औचित्य को ही समाप्त कर देगी। महात्मा गांधी द्वारा सुझाए गए मंत्र- 'नफरत अपराधी से नहीं, अपराध से होनी चाहिए' को मृत्युदंड के विषय में दिशासूचक यंत्र के रूप में देखा जा सकता है।

● *प्रशांत कुमार तिवारी, ईसीसी, प्रयागराज*

जनादेश के निहितार्थ

झारखंड के चुनावों में भाजपा को करारा झटका लगा। कुल 81 विधानसभा सीटों में महज 25 सीटें उसे मिल सकीं। बारह सीटों का उसे नुकसान उठाना पड़ा। अब यह सवाल स्वाभाविक है कि जिस भाजपा को झारखंड लोकसभा चुनाव चौदह में से बारह सीटें मिली थीं, उसे आखिर विधानसभा में इतनी बुरी तरह मुंह की क्यों खानी पड़ी। राजनीतिक घटनाक्रमों से जुड़े अनुभव कहते हैं कि भाजपा ने झारखंड में सत्ताईस फीसदी आदिवासी आबादी की उपेक्षा की, उसे कोई नेतृत्व नहीं दिया है, वहीं करीब दस-बारह दल-बदलुओं को टिकट दिए, जिससे उसे अपने लोगों का बागी होना देखना पड़ा।

पूरे चुनाव में स्थानीय मुद्दे को दरकिनार कर राष्ट्रीय मुद्दे को थोप दिया गया था। साथ ही आदिवासी इलाकों में जमीन संरक्षण कानून को बदलना भी भारी पड़ा। जल, जंगल और जमीन की अवहेलना तथा सत्ता विरोधी लहर भी हार की वजह बनी। विडंबना देखिए कि जो पार्टी देश के इकहत्तर फीसदी भूभाग पर अपनी राज्य सरकारों के जरिए शासन करती थी, आज सिर्फ बयालीस फीसदी पर सिमट गई है। एक साल में पांच बड़े राज्य भारतीय जनता पार्टी ने गंवाए। गौरतलब तो है कि आम लोगों को आज के दिन में दो जून की रोटी के अवसर और अमन-चैन वाला माहौल चाहिए, आसमान छूती महंगाई से मुक्ति चाहिए, न कि विवादित पहलुओं पर माथा-पच्ची और हिंसा-प्रतिहिंसा। एक जमाने में इंदिरा गांधी जब दक्षिणी राज्यों में हारने लगी थीं, तब क्षेत्रीय क्षत्रपों के साथ उन्हें सत्ता साझा करनी पड़ी थी।

खैर, अब जब जनादेश भाजपा के विरुद्ध गई है तो उससे जुड़े विचारकों के लिए सोचने का वक्त है कि चुनाव के दौरान गणितीय समीकरण पर दिमाग लगाने के बजाय क्षेत्रीय रासायनिक समीकरण पर भी को भी भांपना जरूरी होता है। इन दोनों के बीच की खाई ही पराजय का कारण बनती है जो झारखंड जनादेश में दिखा।

● *हर्ष वर्द्धन कुमार, कदमकुआं, पटना*

जल जीवन

उम्मीद की जानी चाहिए कि देश के कई इलाकों में गिरते भूजल स्तर को बढ़ाने के लिऐ प्रधानमंत्री द्वारा अटल भूजल योजना की शुरुआत आने वाले समय में एक अच्छा प्रयास साबित होगी। हर साल सूखे से देश के कई राज्यों के करीब आठ हजार से अधिक गांवों में लोगों को पानी के लिए काफी संघर्ष करना पड़ता है। इस योजना के अमल मे आने के बाद देश के सात राज्यों को इसका फायदा मिलेगा। भूजल स्तर बढ़ने से पीने के पानी के साथ ही कृषि क्षेत्र मे इजाफा होगा और लोग खुशहाल होंगे।

● *संजय डागा, इंदौर, मध्यप्रदेश*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

नई दिल्ली

www.readwhere.com